सारंग अंग के प्रचलित एवं कतिपय अप्रचलित रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी)
दयालबाग, आगरा की संगीत विषय में पी.एच.डी. उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध प्रबन्ध
की रूपरेखा
2014

निर्देशिका :–

डा0 (श्रीमती) पर्ली सेबास्टियन
एसोसिएट प्रोफेसर
संगीत विभाग

शोधकर्त्री :–

कीर्ति तिवारी
संगीत विभाग
(गायन)

संगीत विभागाध्यक्षा

प्रो0 (श्रीमती) सुभद्रा कुमारी सतसंगी

कला संकाय प्रमुख

प्रो0 (श्रीमती) उर्मिला आनन्द

दयालबाग एजूकेशनल इन्स्टीट्यूट (डीम्ड यूनिवर्सिटी)
दयालबाग, आगरा – 282005

<u>सारंग अंग के प्रचलित एवं कतिपय अप्रचलित रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन</u>

भूमिका

भारतीय शास्त्रीय संगीत रागों का अथाह सागर है। राग ही सम्पूर्ण शास्त्रीय संगीत का आधार है। गायक हो अथवा वादक अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिये सबसे पहले राग का ही चुनाव करते हैं। शास्त्रीय संगीत की शुरूआत ही राग के स्वरों से होती है। राग के लिये कहा गया है–राग एक ध्वनि रचना है एवं सुनने वाली वस्तु है जो स्वरों से युक्त और वो स्वर रचना वर्णों द्वारा की हुई हो और मन को रंजन करने वाली हो । राग एक माध्यम है शास्त्रीय संगीत को प्रदर्शित करने का जिसमें स्वर सबसे महत्व पूर्ण है। निश्चित स्वर समूह से ही भिन्न भिन्न राग बनते हैं तथा रागों का स्वरूप उनके लक्षण और नियमों पर आधारित है। उन्हीं के द्वारा प्रत्येक राग एक दूसरे से अलग होते हैं। उनकी अपनी अलग पहचान उसी से बनती है। इसी राग मूलक संगीत को शास्त्रीय संगीत कहा जाता है।

'राग' के जन्म के बारे में अलग–अलग ग्रन्थकारों ने अपने अलग–अलग मद व्यक्त किये हैं। कुछ विद्वानों का कहना है 'जाति' राग की ही पूर्व संज्ञा थी। आचार्य मतंग ने जाति को राग की जननी कहा है –

''सकलस्य रागोदेर्जन्मदेतुत्वाज्जातय इति''

(बृहद्देशी)

मतंग ने कहा है कि संसार में जो कुछ भी गया जाता है। वह जातियों के ही अन्तर्गत है –

'यकिंचिद् गीयते लोके तत्सर्वं जातिषु स्थितम्'

इस प्रकार से जाति को राग आदि समस्त गेय प्रकारों के वर्गीकरण की व्यवस्था भी माना जा सकता है।

जाति राग के विषय में नाट्य शास्त्र में भरत मुनि ने कहा है कि अल्प गंधार – निषाद वाली जातियों में अवरोह में अन्तर गंधार और काकली निषाद नामक साधारण स्वरों का प्रयोग किये जाने पर जाति राग बनते हैं। भरत काल के बाद के समय में जाति गान का प्रचार धीरे – धीरे कम हो गया तथा रागों का प्रचार अधिक हो जाने के कारण जाति की जगह रागों ने ग्रहण कर ली। इस प्रकार भरत ने नाट्य शास्त्र में जाति, जाति राग तथा ग्राम राग तीनों का उल्लेख किया है।

राग का स्पष्ट उल्लेख मतंग कृत ''बृहद्देशी'' में ही मिलता है। उससे पहले रागों का विस्तार, प्रचार, विकास, के बारे में और किसी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं है। ऐसा विद्ववानों ने कहा है कि 'बृहद्देशी' में ही राग व्यवस्था की प्रथम उपलब्धि होती है। राग के उल्लेख के साथ–साथ मतंग के ''बृहद्देशी'' में राग व्यवस्था और राग वर्गीकरण का भी विस्तृत विस्तार मिलता है। राग की परिभाषा ''बृहद्देशी'' में कुछ इस प्रकार है।

''योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्ण विभूषितः ।

रज्जको जनचित्तानां स च राग उदाहृतः ।।''

अर्थात् स्वर एवं वर्णों से विभूषित विशिष्ट ध्वनि जो लोगों के चित्त का रंजन करती है। उसे राग कहा गया है।

इसी प्रकार कुम्भ कृत संगीत राज की राग विषयक धारणा है –

''विचित्र वर्णालंकारो विशेषे (षो) यो ध्वनेरहि

ग्रहदि स्वर संदर्भो रज्जको राग उच्यते।

(संगीतराज, पदोल्लास)

कुम्भ ने राग के बारे में कहा है कि वर्णों के साथ अलंकारों ग्रहादि राग लक्षणों जैसी सामान्य विशेषताओं के अतिरिक्त राग में निहित रंजकत्व का भी महत्व है। श्लोक के अन्तिम शब्द राग और संगीत के कलात्मक गहन मनन से सम्बन्धित है।

प्राचीन काल से ही विद्वानों द्वारा रागों का भिन्न – भिन्न प्रकार से वर्गीकरण करने के लिये सात गायन शैलियों को आधार बनाया। इसमें से शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, बेसरा तथा साधारणी इन पाँच गीतियों के लिये ग्राम राग तथा विभाषा, भाषा के लिये देषी राग माने। ग्राम रागों को पुरूष तथा देषी रागों को स्त्री राग माना जाता था। जैसा शुद्धा गीति में जिस प्रकार स्वर तथा शब्द का शुद्ध रूप रहता था वह आज ध्रुपद में है। माल श्री, हिन्डोल आदि ऐसे राग हैं जो ध्रुपद के लिये उपयुक्त राग माने जाते हैं। इसी प्रकार भिन्ना गीति में स्वर शब्द लय के भिन्न–भिन्न रूपों से युक्त राग आते हैं। भिन्ना गीति को आधुनिक समय में धमार के समान माना जाता है। गौड़ी गीति के अन्तर्गत वे राग रखे गये जिसमें स्वर आदि में भावुकता आती थी। गौड़ी गीति के समान अब ठुमरी को स्थान दिया गया है तथा बेसरा गीति में वे राग आते थे जिनमें स्वरों का प्रयोग वेग से होता है। आधुनिक काल में टप्पा शैली के लिये उपयुक्त राग इसी श्रेणी में आ सकते हैं। साधारणा गीति में अन्य चार गीति के गुणों को माना है। इसके अन्तर्गत ऐसे राग रखे गये जिसमें ऐसी विशेषतायें थी। भाषा, विभाषा के लिये देषी राग थे। जो रागिनी रूप में प्रयुक्त होते थे।

इसी प्रकार नारद कृत संगीत मकरन्द में रागों को परिवारिक रूप के अन्तर्गत रखा गया है। नारद ने रागों को पुरूष, स्त्री तथा नपुंसक में बाँटा है। बाद में रागों पुरूष, स्त्री, तथा शिशु रागों के आधार पर वर्गीकृत किया गया है। गम्भीर प्रकृति के रागों को पुरूष, कोमल प्रकृति के रागों को स्त्री राग या रागिनी तथा चंचल प्रकृति के रागों को शिशु राग कहा गया है।

राग रागिनी पद्धति मे चार मत प्रचलित रहे हैं। शिवमत, कृष्णमत, भरतमत तथा हनुमत मत । यह चारों मत छः मुख्य राग मानते थे तथा हर राग का सम्बन्ध छः ऋतुओं से जोड़ते थे। इन चारों मतों के अनुसार मुख्य राग छः थे, पर उनके नाम हर मत में अलग – अलग हैं। इसी प्रकार रागनियों की संख्या तथा नाम भी अलग–अलग मिलते हैं।

पंडित शारंग देव जी के अनुसार संगीत रत्नाकर ग्रन्थ के दूसरे अध्याय में 264 रागों का वर्णन किया गया है। इन्हीं रागों को ग्रन्थ कार ने दस वर्गों में बॉटा है। इसी को दशविध राग वर्गीकरण कहते हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं–

ग्राम राग, उप राग, राग, भाषा, विभाषा, अन्तरभाषा, रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग। इनमें से आरम्भिक छः वगों का सम्बन्ध मार्ग संगीत से और अन्तिम चार का सम्बन्ध देशी संगीत से है।

मार्ग – देशी के अन्तर्गत रागों के वर्गीकरण का मुख्य आधार नियमबद्धता और स्वेच्छा है। जिनमें नियम रूढ़ हो गये और जो ज्यादा नियमबद्ध थे वे मार्ग कहे गये और जिनमें स्वेच्छा यनि नियमों में शिथिलिता थी वे देशी कहलाये।

इसी राग वर्गीकरण के अन्तर्गत मेल राग वर्गीकरण भी आता है। मेल राग वर्गीकरण दक्षिणी संगीत पद्धति की उपज है। मेल शब्द हिन्दी के मिलना शब्द से सम्बन्धित है। जिन रागों के स्वर किसी थाट या मेल से मिलते हैं उन्हें उस थाट के अन्तर्गत रखा जाता है। जैसे – रागदेश मे दोनो निषाद और शेष स्वर शुद्ध लगते हैं इसके स्वर खमाज थाट के समान हैं। इसलिये यह खमाज थाट का राग है। इसी प्रकार शेष रागों को भी माना जा सकता है। मेल की परिभाषा कहते हुये पंडित श्री निवास जी ने राग तत्व विबोध में इस प्रकार कहा है–

''मेलः स्वरसमूहः स्याद्रागव्यंजनशक्तिमान्''

अर्थात् मेल (थाट) उस स्वर समूह को कहते हैं जिससे राग उत्पन्न होते हैं।

विजयनगर के मंत्री माधवाचार्य जी को इस वर्गीकरण का जनक कहा जाता है। उस समय उन्होनें रागों को वर्गीकृत करने के लिये इस नवीन वर्गीकरण की रचना की हर मेल का नाम उस समय के प्रसिद्ध राग के नाम के अनुसार रखा गया। इस प्रकार मधवाचार्य जी ने 15 मेल मानते हुये 50 रागों का वर्गीकरण किया।

अन्य विद्वानों के अनुसार समय–समय पर मेलों की संख्या में परिवर्तन हुये हैं। जैसे लोचन झॉ जी ने 12 मेल माने, अहोबल ने 14, श्री निवास ने 14, रामामात्य ने 20 मेल, भातखण्डे जी ने 10 तथा पंडित व्यकंटमुखी ने गणित के आधार पर 72 मेल बताये हैं।

संगीत मकरन्द में रस के अनुसार रागों का वर्गीकरण मिलता है। इस वर्गीकरण में पुरूष रागों के लिये वीर रस, रौद्र रस आदि को लिया गया है और स्त्री रागों के लिये श्रृंगार रस, हास्य रस तथा करूण रस को माना गया है। इस प्रकार विद्वानों ने रसों का सम्बन्ध रागों से जोड़ा है।

पंडित भातखण्डे जी ने थाट पद्धति को व्यवस्थिति किया है। मध्यकाल में शास्त्र कारों ने सर्वप्रथम मेल शब्द का प्रयोग किया। इसी मेल शब्द को उत्तर भारत संस्थान कहा जाता था। जो कि अब थाट नाम से प्रचलित है। अतः मेल थाट एवं संस्थान एक ही शब्द के पर्यायवाची हैं। उत्तर भारत में थाटों की संख्या मे परिवर्तन होते रहे हैं। पंडित भातखण्डे जी ने पहले 32 थाटों को गणित द्वारा प्रकाशित किया। लेकिन 32 थाटों में से केवल 10 थाटों को भातखण्डे जी ने मुख्य थाट माने हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं – बिलावल थाट, खमाज थाट, काफी थाट, भैरव थाट, आसावरी थाट, भैरवी थाट, कल्याण थाट, मारवा थाट, पूर्वी थाट एवं तोड़ी थाट। यह 10 ही आधुनिक समय में प्रचलित हैं।

राग की सामान्य पहचान तो स्वर के द्वारा ही हो जाती है। लेकिन सूक्ष्म पहचान विशिष्ट स्वर समूहों के माध्यम से ही होती है। यही स्वर समूह रागांग हैं। राग की अपनी पहचान की एक विशेष स्वर संगति होती है। यही रागांग है तथा इन्हें ध्वनि विषेष या राग काकु भी कह सकते हैं। पंडित भातखण्डे जी के अनुसार ''रागांग स्वरों का समुदाय होता है। जो राग रूपी शरीर का मुख्य अंश या भाग होता है। जो रागों में अधिक स्पष्ट दिखाई देता है।'' इसी प्रकार पंडित नारायण मोरेश्वरखरे के अनुसार ''रागांग का अर्थ रागों के अंगभूत टुकड़े चुनकर उनके आधार पर बनने वाले रागों से है।''

अंग का अर्थ है स्वर संगति। जिन रागों में समान स्वर संगतियॉ होती हैं वे राग एक अंग या एक वर्ग को दिखाते हैं। जैसे – वर्तमान काल में कान्हड़ा, मल्हार, सारंग, तोड़ी आदि बड़े रागों के अनेक प्रकार प्रचलित हैं। वैसे ही प्राचीन काल में भी राग भेद सम्बन्धित विवरण प्राप्त होता है। मध्य युग में भावभट्ट से अनूप संगीत रत्नाकर में 18 रागों के 148 राग भेद बताये गये हैं। हर राग का एक स्वतन्त्र अंग होता है जिसके कारण वह अन्य रागों से अलग पहचाना जाता है। यह विशिष्टता प्रत्येक जाति की स्वर रचना और उसके नियम पर निर्भर है। ऐसी रचनाओं की संख्या सीमित है। मुख्यतः जो स्वर रचनायें सामान्य रूप से अनेक रागों में आती हैं। उनकी संख्या 25 या 30 से अधिक नहीं है। यही स्वर संगतियाँ मुख्य राग के रागांगों में सामान्य रूप से आती हैं और यह एक अंग कहलाती हैं। उदाहरण – देश और सोरठ के आरोह में सारंग अंग का होना इसी प्रकार कान्हड़ा के प्रकारों (अड़ाना, दरबारी, कान्हड़ा, सूहा, नायकी) आदि रागों में भी सारंग अंग है।

श्री विमलकान्त राय चौधुरी के अनुसार अंग का शब्दार्थ है 'अवयव' या 'भाग'। इसको पूर्वांग का उत्तरांग कह सकते हैं अथवा इसका अर्थ भिन्न राग की छाया भी हो सकता है। जैसे राग गौरी का एक प्रकार ललित अंग का है तो कह सकते हैं कि गौरी राग में ललित अंग की छाया है। अतः रागांग को राग का महत्वपूर्ण अंश माना

जाता है। यह महत्वपूर्ण 'रागांग' विशिष्ट रागों के समूह में सामान्य होकर उस राग समूह की अलग पहचान बना देता है।

डा0 कृष्णा विष्ट जी ने अंग के बारे में बताते हुये कहा है कि :–

"Just as the idiom and not merely grammar makes a language so also it is the 'Anga' and not merely the scale of a 'Raga' that is its distinguishing feature"

भावार्थ यह है कि जिस प्रकार एक भाषा शब्दों का संग्रह मात्र नहीं होती वह व्याकरण के द्वारा यदि सही रूप प्राप्त करती है तो उस भाषा का सौन्दर्य – वर्धन होता है। इसी प्रकार राग मात्र स्वरों का संग्रह नही है। क्योंकि स्वरों के नियमित व समुचित प्रयोग एवं विशिष्ट स्वर संगतियों के द्वारा ही वह मौलिक सौंदर्य सम्पन्न बनता है। राग के विशिष्ट गुणों का दर्शन अंग के माध्यम से ही होता है।

सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण :–

शोध प्रबंध :

1. रागांग पद्धति में वर्गीकृत रागों में रसनिष्पत्ति पर डा0 नमिता सक्सेना ने कार्य किया है। उन्होनें अपने शोध प्रबंध में रागांग का विस्तृत अर्थ तथा इतिहास, रागांग राग का विस्तृत अध्ययन, राग और समय रागांग पद्धति तथा राग वर्गीकरण एवं रागांग राग और समय के अध्ययन के बारे में बताया है।
2. सारंग मल्हार और कान्हड़ा अंग के रागों का सम्वत अध्ययन इस विषय पर डा0 प्रेमलता नाहर ने सन् 1984 में दिल्ली विश्वविद्यालय में अपना शोध कार्य किया है।
3. राग सारंग के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन तथा उसका मल्हार, कान्हड़ा तथा अन्य रागों पर प्रभाव इस विषय पर डा0 दीपक कुमार त्रिपाठी ने सन् 2010 में भातखण्डे विश्वविद्यालय, लखनऊ में अपना शोध कार्य सम्पन्न किया है।

4. भारतीय संगीत में सारंग की भूमिका : एक विवेचनात्मक अध्ययन, इस विषय पर डा0 शगुफ्ता मिर्जा ने सन् 2011 में अपना शोध कार्य पूर्ण किया है।

<u>पुस्तकें :</u>

1. प्रेमलता नाहर, हिन्दुस्तानी संगीत में सारंग, मल्हार, कांहड़ा, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002।
2. डा0 मृदुलापुरी, संगीत मीमांसा, सत्यम पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली–2007।
3. स्व0 पंडित नारायण मोरेस्वरखरे, रागांग पद्धति, संगीत कला विहार, अगस्त–2007।
4. रेणू राजन, हिन्दुस्तानी संगीत में राग–लक्षण, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली–1996।
5. डा0 रेनु जैन, स्वर और राग परिभाषिक संज्ञाओं के परिपेक्ष्य में, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2006।
6. डा0 वसन्त राव, राजोपाध्याय, सारंग के प्रकार, संगीत कला विहार, नवम्बर–1992।
7. डा0 नमिता यादव, मतंग से पूर्व राग की अवधारणा एवं विकास, अनुभव पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण – 2009।
8. डा0 रमाकान्त द्विवेदी, संगीत स्वरित, साहित्य रत्नालय, कानपुर, प्रथम संस्करण 2004।
9. डा0 डी. बी. क्षीरसागर, श्री मतंग मुनि कृत बृहद्देशी **पब्लिकेशन** स्कीम जयपुर 1998।
10. डा0 भारती शर्मा, हिन्दुस्तानी संगीत में शुद्ध–छायालंग एवं संकीर्ण रागों की अवधारणा संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2005।

इस संदर्भ में शोधकर्त्री ने अपने विषय से सम्बन्धित प्राप्त शोध प्रबंधों द्वारा, पुस्तकों द्वारा, नेट–इन्टरनेट एवं अन्य स्त्रोतों से जो उसे जानकारी प्राप्त हुई है उसका विवरण

सम्बन्धित साहित्य में दिया है। इस सम्बन्ध में साहित्य में डा0 प्रेमलता नाहर जी ने अपनी पुस्तक में रागांग का महत्व, सारंग मल्हार और कान्हड़ा का ऐतिहासिक विवेचन, सारंग अंग के राग, मल्हार अंग के राग, एवं कान्हड़ा अंग के रागों के बारे में बताया है तथा इसी प्रकार से डा0 मृदुलापुरी जी ने संगीत मीमांसा में भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं संगीत की विशेषतायें, विभिन्न परम्पराओं में विकसित गायन शैलियॉ, घराना परम्परा एवं विविध कलाकारों का योगदान, संगीतिक शैलियों तथा ख्याल–ठुमरी–टप्पा–गजल– दादरा–अर्थ, अविष्कर्ता एवं विकास को अपनी पुस्तक में अध्यायों द्वारा उल्लेख किया है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि सम्बन्धित साहित्य में दी गयी जानकारी में सारंग अंग से सम्बन्धित कार्य हुआ है लेकिन जिस दृष्टिकोण से शोधकर्त्री अपना शोध कार्य करना चाहती है उस विषय पर अभी तक कोई कार्य नहीं हुआ है।

अतः शोधकर्त्री ने अपनी जिज्ञासावश सारंग अंग के प्रचलित तथा कतिपय अप्रचलित रागों पर विश्लेषणत्मक अध्ययन करने का चुनाव किया है जिससे कि उक्त विषय को पूर्ण रूप से और अधिक स्पष्ट किया जा सकेगा।

विषय कथन :

शोधकर्त्री ने अपने शोध प्रबंध कार्य हेतु ''सारंग अंग'' प्रचलित एवं कतिपय अप्रचलित रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'' विषय का चुनाव किया है।

अध्ययन की उपयोगिता :

इस अध्ययन के द्वारा सारंग अंग के प्रचलित राग रूपों तथा कतिपय अप्रचलित राग रूपों का ज्ञान प्राप्त होगा जिससे शोधकर्त्री के राग सम्बन्धित ज्ञान में वृद्धि होगी। साथ ही भावी संगीत विद्यार्थियों को इस अध्ययन का लाभ प्राप्त होगा।

अध्ययन का उद्‌देष्य :

शोधकर्त्री सारंग अंग के प्रचलित एवं कतिपय अप्रचलित रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करेगी।

1. रागांग पद्धति का अध्ययन
2. सारंग अंग के प्रचलित राग रूपों का अध्ययन
3. सारंग अंग के कतिपय अप्रचलित रागों का अध्ययन

विषय का परिसीमांकन :

प्रस्तुत शोध प्रबंध कार्य की समय सीमा को ध्यान में रखते हुये शोधकर्त्री अपने शोध कार्य के अन्तर्गत सारंग अंग के प्रचलित एवं कतिपय अप्रचलित रागों का विश्लेषणात्मक अध्ययन करेगी।

अध्ययन विधि :

यह शोध अध्ययन सर्वेक्षणात्मक, प्रयोगात्मक अभ्यास के द्वारा, विश्लेषणात्मक, निरीक्षण एवं प्रश्नावली विधियों के द्वारा किया जायेगा।

अध्ययन के स्त्रोत :

शोध का अध्ययन कार्य उपलब्ध पुस्तकों, पुस्तकालयों, पत्र पत्रिकाओं, साक्षात्कार, कलाकारों व विद्वानों से विचार–विमर्श के माध्यम से प्राप्त जानकारी आदि की सहायता से पूर्ण किया जायेगा।

अध्ययन की रूपरेखा :

विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त शोध अध्ययन के विषय से सम्बन्धित जानकारी को निम्न लिखित अध्यायों में सनियोजित किया जायेगा।

प्रथम अध्याय :– हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में रागों का वर्गीकरण

द्वितीय अध्याय :– रागांग पद्धति

तृतीय अध्याय :– सारंग अंग

चतुर्थ अध्याय :– सारंग अंग के प्रचलित रागों का अध्ययन

पंचम अध्याय :– सारंग अंग के कतिपय अप्रचलित रागों का अध्ययन

षष्ठम अध्याय :– उपसंहार

संदर्भ ग्रन्थ सूची

पुस्तकें :

1. डा0 नाहर प्रेमलता – हिन्दुस्तानी संगीत में सारंग, मल्हार, कन्हाड़ा, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002।
2. डा0 गर्ग उमा – राग विश्लेषण, संजय प्रकाशन, नई दिल्ली, सन् 2004।
3. पाठक सुनन्दा – हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास, राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, जनवरी 1989।
4. डा0 चौधरी रानी सुभाष – संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त, कनिष्का पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2002।
5. डा0 टाक सिंह तेज – सुबोध संगीत शास्त्र, बेकरा, आलमी फाउन्डेशन, सन् 2005।
6. शर्मा मृत्युन्जय – संगीत मैनुअल, एच.जी. पब्लिकेशन, नई दिल्ली सन् 2002।

पत्रिकायें :

1. संगीत कला विहार, जनवरी–2013 ।
2. संगीत कला विहार, सितम्बर–2011 ।
3. संगीत, संगीत कार्यालय, हाथरस।